मनुष्य बनो

जून
१९९१

शरणा

शुभ संकल्प,

क्षमा,

प्रेम,

निष्काम कर्म,

ब्रह्म

पालन,

अंक

दयाल फकीर चन्द जी महार

मानवता मन्दिर होशियारपुर (पंजा

'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्त... दृष्टिकोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचार, सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है मनुष्य बनना और बनाना।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायेगा।

४—किसी धर्म पन्थ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे।

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जांय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ-साफ अवश्य लिखना चाहिए। उत्तर के लिये जवाबीकार्ड आना चाहिए वी० पी०पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायेगी। इसका वार्षिक मूल्य २०.०० है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुंचे तो पहले अपने यहाँ डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर न मिले व अगला अंक निकलने के एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजनी चाहिए। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफ-साफ लिखना चाहिए। और पते की तबदीली भी।

—प्रकाशक

R. S.

ओ३म पूर्णमद पूर्णमिदं: पूर्णात्पूर्णमदुच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

मनुष्य बनो

वर्ष ४०	जून १९९१	अङ्क ९

गाफिल शब्दावली से—

शब्द

खुश रहो हर रंग में, मालिक की मर्जी जानकर।
जिन्दगी अपनी बनाओ, गुरु की बातें मानकर ।१।
आसरे उसके रहो, जो हैं सभी का आसरा।
मौज को तुम परख लो, और सोओ लम्बी तानकर ।२।
गुरु की मैं में मैं मिलाओ, छोड़ दो अहम् पना।
चिन्ता कमजोरी को अपनी,अपने गुरु को दान कर ।३।
गंगा यमुना, सरस्वती के मेल का संगम करो।
इंगला, पिंगला, सुषुम्ना, त्रिवेणी में स्नान कर ।४।
जब कभी मन बाहर जाये, खेंचो इसकी डोर को।
यह ही प्रतिहार है, समझो इसी गुरु ज्ञान को ५।
शब्द गुरु का अंग है, और नाम गुरु का संग है।
दोनों को भूलो न हरगिज,जान कर अनजान कर ।६।
प्रेम भक्ति कर्म से तुम, मन का बर्तन माँज लो।
'गाफिल' नहीं होना कभी, हर दम गुरु का गान कर ।७।

— × —

मासिक सन्देश

परमदयाल सद्गुरू हजूर मानव दयाल

(डा० ईश्वरचन्द्र शर्मा जी महाराज)

मेरी अपनी ही आत्मा के अंश

मेरे परम प्रिय सत्संगियों !

राधास्वामी, परम दयाल जी सहाई ।

पिछले मासिक सन्देश विशेषाँक वैशाखी सन्देश था। इसलिये मैं उसमें आपको सत्संग दौरे की सूचना न दे सका मार्च महीने के सत्संग में मैंने आपको बताया था कि हम २० जनवरी १९९१ को रात के दस बजे राधास्वामी जनरल सत्संग केन्द्र राजपूतबाड़ी हनमकुण्डा पहुँच गये थे। उस समय तक बहुत से स्थानीय सत्संगी वहाँ पर हमारी प्रतीक्षा में मौजूद थे। सत्संग स्थल मन्दिर और सारा भवन नाना प्रकार के रंगों के बल्बों से जगमग हो रहा था। इस बार की मण्डप की सजावट भी पिछले वर्ष की तरह बहुत ही सुन्दर थी। पिछले वर्ष की भाँति परमदयाल जी महाराज का रूप बिजली के प्रकाशमय सुन्दर बल्बों से दीप्तमान था। यहां पर यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या यह सजावट हमारे सिद्धांतों के अनुरूप है, क्या हमें ऐसी सजावट पर खर्च करना चाहिए ? इसका दूसरा पहलू यह है कि स्थानीय प्रबन्धकों का अगाध प्रेम, जो उन्हें सालाना सन्त सम्मेलन को सुचारू से सम्पन्न करने की प्रेरणा देता है,सराहनीय है। इसलिये उनकी भावुकतापूर्ण प्रवृत्ति उनके सहज स्वभाव को प्रगट करती है और यदि उनकी इस प्रेम की भावना को अनुचित कहा जाये

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

तो हमारा यह व्यवहार मानवीय नहीं होगा । दूसरी बात है कि बसन्त सन्त सम्मेलन के प्रबन्धकों को इस सजावट खर्चे का बोझ नहीं पड़ा । किसी श्रद्धालु सत्संगी ने, जिसका व्यवसाय बिजली की सजावट आदि का है, बिना किसी शुल्क के मण्डप को यह सेवा की थी । तीसरी बात यह है कि सजावट के जगमगाते प्रकाश का प्रभाव सभी के मन पर पड़ा और मुझे विश्वास है कि प्रकाश और शब्द के अनुयायी सत्संगियों ने इसे अपने आन्तरिक प्रकाश से अवश्य सम्बन्धित किया होगा । इन कारणों से मैं इस सजावट को उचित मानता हूँ । काश कि आप भी इस सुन्दर दृश्य को देख सकते । इसलिये मैं अपने सरल शब्दों में इस रमणीय दृश्य को मासिक सदेश में आपके लिये लिख रहा हूँ ताकि आप यह महसूस करें कि आप मेरे आत्मांश होने के कारण ऐसे अवसर पर मेरे साथ साथ चल रहे होते हैं । मैं तो ऐसे ही महसूस करता हूँ ।

जहां तक किसी की भावना को ठेस पहुचाने का सम्बन्ध है, मैं केवल इसी व्यवहार को महापाप समझता हूँ । इस जगत् में कोई भी वस्तु या कर्म अपने आप में न अच्छा है न बुरा है अच्छाई बुराई हमारी भावना पर निर्भर है । एक ही कर्म एक व्यक्ति के लिये किये जाने से शुभ और अच्छा है और दूसरे व्यक्ति के किये जाने से अनैतिक और अशुभ है । यदि कर्म करने वाला किसी कर्म को सद्भावना से, सच्चे प्रेम से प्रेरित होकर दूसरे व्यक्ति के हित के लिये करता है वह कर्म हर हालत में शुभ होगा, चाहे उसका बाहरी परिणाम कुछ भी क्यों न हो । ऐसा कर्म कभी भी जीव को बन्धन में नहीं डालता । इसलिये संत शिरोमणि तुलसीदास जी ने कहा है—

परहित सरिस धर्म नहीं भाई ।
परपीड़ा सम नहीं अधमाई ।।

मेरी बचपन से यही प्रवृत्ति और आन्तरिक इच्छा थी कि मैं जो भी कर्म करूँ उससे किसी भी व्यक्ति को हानि न हो और विशेषकर उसके मन को ठेस न लगे। जब से मैंने होश संभाला है, मैंने जान-बूझकर किसी को शरीर, मन और वचन से हानि पहुचाने की कोशिश नहीं की। जब कभी भी मैंने क्रोध या रुष्ट होने का अभिनय किया है, वह केवल दूसरे के हित के लिये ही किया है। यही कारण है कि मेरा अन्त:-करण साफ है. मेरा प्रेम व्यापक है और मेरी दृष्टि में कोई भी व्यक्ति बुरा नहीं है और न ही कोई नफरत का पात्र है। मैंने इसी दृष्टि से एक बार परमदयाल जी महाराज से कहा था, "महाराज जी ! मैं यह नहीं चाहता कि सत्संगी मेरी आरती करें, क्योंकि इससे मेरे अचेतन मन में यह भावना हो सकती है कि मैं कुछ बन गया हूँ।" परमदयाल जी ने मुझसे कहा "तुम्हारा दृष्टिकोण बिल्कुल सही है, किन्तु यदि तुम प्रेममय भोले भाले सत्संगियों को आरती करने से रोकोगे तो उनके मन को ठेस लगेगी। तुम्हें उनकी भावनाओं का संरक्षण करना चाहिए।" अत: हे मेरे प्यारे अंशो, मैं आपको आरती करने से मना नहीं करता।

पिछले १० वर्षों में उनकी आज्ञा का पालन करते हुए और यह जानते हुए भी कि सत्संगी आरती करते समय अपनी ही आरती करते हैं, मैं उस दौरान में आँखें बन्द करके ध्यान में चला जाता हूं। इस थोड़े अर्से में मुझे जो परमानन्द की अनुभूति होती है, उसका बयान नहीं किया जा सकता। इस प्रकार सद्भावना से सत्संगियों को ठेस न पहुचाने की दृष्टि से और अपने आपको अहंकार से बचाने की दृष्टि से जब मैं गुरु की आज्ञा का पालन करता हूं, तो उससे सत्संगियों को भी लाभ होता है और मेरी आध्यात्मिकता में भी उन्नति

होतो है । इसलिये हनमकुण्डा के सत्संगियों और सत
प्रबन्धकों की भावना की मैं सराहना करता हूँ । इस स
के अलाबा सब बाहर से आने वाले सत्संगियों के ठहरने का
और उनके भाजन का प्रबन्ध भी बहुत ही अच्छा था । सभी
प्रबंध की प्रसंशा कर रहे थे ।

वहाँ पहुंचने के तुरन्त बाद सभी सत्संगी और प्रबंधक मेरे साथ दातादयाल जी के मन्दिर के मन्दिर गये और सबने प्रेम और श्रद्धा से उनकी आरती उतारी । कुछ समय सत्संगियों से वार्तालाप करने के बाद हमने विश्राम किया । २१ जनवरी को प्रातःकाल का सत्संग आयोजित हुआ, जिसमें पहले शब्दानन्द जी ने सत्संग दिया, उसके पश्चात मेरा सत्संग दो घण्टे तक चला । हनमकुण्डा के और बाहर से आने वाले सत्संगी बड़ी श्रद्धा से सत्संग सुनते रहे और मस्ती से झूमते रहे । सत्संग के तुरन्त बाद,करीब ४५ मिनट तक सभी सत्संगी आर्शीवाद के लिये बड़ी श्रद्धा से मुझे मिलते रहे । मैं उनके अनुशासन की अवश्य प्रशंसा करना चाहूँगा । पहले स्त्रियों ने लाइन बनाकर एक-एक करके बिना किसी धक्का मुक्की के आर्शीवाद लिया और उसके बाद पुरुषों तथा बच्चों ने भी वैसा ही किया । मैं चाहता हूँ कि हर स्थान पर जहाँ सत्संगियों की संख्या बहुत बड़ी होती है, इसी प्रकार सहनशीलता से अनुशासन में रहकर ही प्रसाद या आर्शीवाद लेना चाहिए जल्दी और चिन्ता न करने से सभी को आराम भी मिलता है और समय भी बच जाता है । इसके तुरन्त बाद मैं भोजन शाला में गया और भोजन को राधास्वामी कहकर स्पर्श किया और सभी सत्संगियों को स्वयँ सेवकों द्वारा बड़े प्रेम और अनुशासन से मेजों और कुर्सियों पर भोजन परोसा गया ।

मुझे लंगर का यह प्रबन्ध बहुत ही अच्छा लगा। जब मैं भोजन खाते हुए सत्संगियों की पंक्ति से गुजरा, तो उनके चेहरे पर रौनक आ गयी। उन्होंने बड़े प्रेम से नमस्कार और राधास्वामी किया और मैंने भी उन्हें भोजन खाते हुए न उठने का आदेश देते हुए, 'राधास्वामी' कहते हुए आशीर्वाद दिया। मेरे आत्मांश परम प्रिय सत्संगियों ! घर पर भोजन खाते हुए आप हमेशा प्रसन्न मुद्रा में रहा करें और राधास्वामी सुमिरन को न भूला करें। ऐसा करने से भोजन अमृत बन जाता है। गृहिणियों को चाहिए कि वह भोजन खाते और खिलाते समय कभी भी पति व बच्चों से क्रोध न किया कर। जिस घर में भोजन खाते समय क्रोध या नफरत का व्यवहार होता है वहाँ भोजन विष बनकर अनेक शारीरिक बीमारियाँ पैदा करता है। यह एक बड़ा भारी रहस्य है, जिसको समझकर और मेरे आदेश का पालन करके आपके सब घर वाले स्वस्थ और सुखी रहते हैं। देखने में तो यह बात मामूली प्रतीत होती है लेकिन इस पर अमल करने से तुम्हारे परिवार का नक्शा बदल सकता है। केवल सत्संग सुनने से कुछ नहीं होता मेरे प्यारे ! उस पर अमल करो।

इस कर्त्तव्य का पालन करने के बाद मैं अपने कमरे में गया। कुछ देर बाद मुझे और मेरे साथ आये हुए सभी अतिथियों का श्रीमती आमन देवी ने रसोई में बैठाकर बड़े प्रेम से भोजन खिलाया। मैंने पहले भी आपको सम्भवतया बताया था कि श्रीमती आमन देवी उस सेठ चन्द्रकान्तिया जी की पत्नी है, जिन्होंने बहुत वर्ष पहले शिव के इष्ट की सिद्धि प्राप्त करने के बाद भी परमदयाल जी महाराज को शरण ली थी और सन्यास की दृष्टि को त्यागकर सन्तमत की दीक्षा लेकर राधास्वामी योग को अपनाया था। चन्द्रकान्तिया जी बहुत

पहले ही परमधाम सिधार गये थे। उनकी पत्नी आमन और उनके सुपुत्र श्री विद्यानाथ हमेशा परमदयाल जी महाराज की तथा मेरी और मेरे साथियों की शुद्ध भोजन खिलाकर लगातार सेवा करते रहे हैं।

उसी दिन प्रातःकाल का सत्संग भी बहुत प्रभावशाली रहा। इसमें आचार्य कैप्टिन लालचन्द्र जी ने भी भाग लिया। मेरा सत्संग दो घण्टे तक चला। दूसरे दिन प्रातःकाल का सत्संग भी बहुत रोचक था। रात के सत्संग में सत्संगियों की संख्या बहुत ज्यादा थी। २२ ता० के प्रातःकाल के सत्संग के बाद और मध्यान के भोजन के बाद स्थानीय अरविन्द आश्रम पर सायंकाल मेरा अंग्रेजी भाषा में सत्संग आयोजित हुआ। इस आश्रम के सदस्यों और श्रोताओं ने मेरी श्री अरविन्द के दर्शन की व्याख्या को बहुत पसन्द किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल हम के० समुद्रम के लिये रवाना हो गये। यह स्थान आन्ध्र प्रदेश में दातादयाल जी महाराज का सबसे पुराना केन्द्र है। यहाँ के केन्द्र को राधास्वामी धाम कहा जाता है। के० समुद्रम से पहले हम एक गाँव वाले केन्द्र पर ठहरे और वहाँ पर एक संक्षिप्त सत्संग भी दिया। इस गाँव के लोग भी बड़े श्रद्धालु है और उनका आग्रह है कि हर वर्ष उनके छोटे केन्द्र पर भी एक सत्संग आयोजित किया जाये। यद्यपि मैं उनके मन को ठेस लगाना नहीं चाहता और अवश्य प्रयास करूँगा कि उनकी यह इच्छा पूरी हो, फिर भी मैं इस सम्बंध में निश्चयपूर्वक आश्वासन नहीं दे सकता। के० समुद्रम में राधास्वामी धाम का भवन बहुत विशाल और सुंदर है। इस केंद्र के साथ ३० एकड़ भूमि भी जुड़ी हुई है। जिस भाई ने यह सम्पत्ति केंद्र के लिये अनुदान दी थी वह दातादयाल जी महाराज की श्रद्धालु शिष्या थी। के० समुद्रम के सत्संगी

पूरी श्रद्धा, आस्था रखते हैं, इसलिये वहाँ का सत्संग बहुत ही अच्छा रहा। मैं सोचता हूँ कि इस केन्द्र को अवश्य पनपाया जाये। उसी रात्रि को हम एक गाँव से होते हुए संक्षिप्त सत्संग के बाद हैदराबाद पहुंच गये। यहाँ पर श्री भगवान व्यास के नये निवास स्थान पर हमारे ठहरने का बहुत ही सुचारू प्रबन्ध था। यद्यपि मदनलाल व्यास जो श्री भगवान व्यास के पिता है, परिवार सहित इस भव्य भवन में किराये पर रहते हैं तथापि इस भवन का मालिक मकान भी श्रद्धालु सत्संगी है और वह उन्हें अपने परिवार का अंग ही मानता है।

दूसरे दिन हम थोड़े समय के लिये ओमप्रकाश मल्होत्रा के घर पर सिकन्द्राबाद में गये। दिन भर भगवान व्यास के घर पर बहुत से सत्संगी परामर्श के लिये आते रहे। सायं काल ७ बजे से सिकंद्राबाद में एक सार्वजनिक स्थान पर एक विशाल सत्संग आयोजित हुआ, जिसमें सिकन्द्राबाद, हैदराबाद, चितलबस्तो और बाहर से आये हुए सत्संगी भारी संख्या में सम्मिलित हुए। इस अवसर पर मेरे सत्संग के शुरू होने से पहले आचार्य शब्दानन्द के अलावा अमेरिका से आये हुए डा रामदेवराव ने भी पहली बार अपने विचार प्रगट किये और परमदयाल जी के अन्तिम सत्संग के बारे में कहा कि उन्होंने परमदयाल जी को अन्तिम सत्संग में यह कहते हुए सुना—"मानव दयाल ! तुम्हारा भी वह समय आ जायेगा जब तुम 'तू' और 'मैं' से भी ऊपर उठ जाओगे। किन्तु इससे पहले तुम्हें सत्संग के द्वारा सत्संगियों की महान सेवा करनी होगी।" प्रसंगवश मैं आपको यह सूचना देते हुए हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ कि परमदयाल जी के इस अन्तिम सत्संग का टैपरिकार्ड का कैसिट मुझे आज ही मिल गया है। मैं

विचार कर रहा हूँ कि इसकी कापियां बनाकर सत्संगियों को उचित मूल्य पर दे दी जाये।

इस सत्संग के बाद हम पुनः श्री मदनलाल व्यास के घर पर आये और भोजन के बाद हमने रात्रि का विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातःकाल हम सबको दहली के लिये रवाना होना था। आचार्य शब्दानन्द, कैप्टिन लालचन्द, नरायनदास डोगरा और भाग्यमाता जी को प्रातःकाल ६ बजे ए. पी. एक्सप्रेस से और मुझे ८॥ बजे इंडियन एयर लाइन्स की उड़ान से दहली रवाना होना था इसलिये पहले हम ट्रेन से जाने वाली पार्टी को विदा करने के लिये सिकन्द्राबाद रेलवे स्टेशन पर गए और उसके पश्चात करीब ३० सत्संगी मेरे साथ हवाई अड्डे पर पहुंचे। इस प्रकार २५ फरवरी को हैदराबाद से रवानाहोकर मैं उसीदिन करीब साढ़े ग्यारह बजे दहली पहुंचे यहाँ पर आचार्य के० पी० वर्मा, एस० एन० खन्ना, दीप खन्ना और कुछ दूसरे सत्संगी स्वागत के लिये मौजूद थे। मेरा दक्षिण का यह संक्षिप्त दौरा सुखद और सफल रहा। मुझे बार-बार यह कहते हुए हर्ष होता है कि हनमकुण्डा, हैदराबाद, सिकन्द्राबाद निजामाबाद, आरमोर और करीमनगर तथा अन्य स्थानों के, आँध्र प्रदेश के सत्संगियों में अगाध श्रद्धा और प्रेम है। हनमकुण्डा और हैदराबाद एव सिकन्द्राबाद के सत्संगों की सफलता का श्रेय वहाँ के स्थानीय प्रबंधकों के अलावा श्रीगोपाल नागारी और चितलबस्ती के प्रेमियो को विशेषकर है। चितलबस्ती की संगीत की पार्टी हर स्थान पर दातादयाल जी महाराज और कबीर साहब के शब्दों की अमृत धारा बहाकर सत्संगों को चार चांद लगा दिये। हनमकुण्डा की प्रबंधक समिति तो मेरे आर्शीवाद की पात्र है ही, इसके अलावा सिकन्द्राबाद और हैदराबाद के

प्रबंध के लिये श्रीमती लीला तिवारी, सर्व श्री नरसिंह तिवारी, मदनलाल व्यास, रूपचंद कबीर डेरा के ईश्वरदास और अन्य सहयोगी सत्संगी भी मेरे प्रेम और आशीर्वाद के अधिकारी हैं।

मेरे आत्मांश परमप्रिय सत्संगियों ! मैं वास्तव में कई बार सोचता हू कि मैं अपने सत्संगों में और मासिक संदेश आदि में 'मैं' शब्द का प्रयोग न करूँ। जब व्यवहारिक दृष्टि से 'मैं' इस शब्द का प्रयोग करता हूँ तो मेरे अन्तर का भाव यह होता है कि इस 'मैं' में तुम सब सम्मिलित हो। मेरी इस भावना का आधार मेरा परमदयाल जी के प्रति अगाध आत्मियतापूर्ण पराप्रेम है। क्योंकि परमदयाल जी महाराज का व्यापक हो गया और वह आप सबके अन्दर और आप भी उनके अन्दर समाविष्ट हो गये हो। इसलिये मेरी उनकी आत्मियता के आधार पर आप और मैं भी एक दूसरे में ओत-प्रोत है। यही कारण है कि आपको सम्बोधित करते समय और विशेषकर मासिक संदेश द्वारा अपने आँतरिक प्रेम की धारा को आप तक पहुँचाकर और उसी धारा को आपके प्रेम से परिपूर्ण होकर, राधा बनकर मेरे अन्दर समाविष्ट करने के लिये ही लिखता हूँ। सम्भवतया मैंने अपने भावों को गूढ़ हिंदी में बताने की कोशिश की है। सीधी सादी भाषा में मैं आपको यह कहना चाहता हूं कि जिस तरह आपको मेरा यह मासिक सन्देश पढ़ते समय ऐसा लगता है कि आप मेर साथ-साथ चलते हुए वही अनुभव कर रहे हैं, जिनको मैं इन सीधे सादे शब्दोमें बयान कर रहा हूँ और यह महसूस करते है कि मेरे प्रेम की अनन्त धारा आप तक पहुंचकर आपको खास खुशी दे रही है, उसी प्रकार ऐ मेरे आत्मांश ! इष्ट रूप परम प्रिय सत्संगियो ! मैं भी यह महसूस करता हूँ कि आपकी आत्माओं

को छूकर वही सच्चे प्रेम की धारा उलटकर और राधा कर हजारों गुना ज्यादा विषदता से मेरे अन्दर फिर द हो जाती है। इसलिये तुम्हारा और मेरा यह प्रेम का आदान प्रदान एवं लेने देने का सिलसिला लगातार चलता रहता है, और चलता रहेगा। मैंने आपको पिछले संदेश में यह बताया था कि राधास्वामी योग प्रेम का योग है। यहाँ पर ज्ञान, ध्यान, कर्म काण्ड और पूजा पाठ की कोई जरूरत नहीं रहती। केवल सच्चा प्रेमी ही इस पराभक्ति के योग के जरिया परम धाम पर पहुंचने का अधिकारी है। स्वामी जी ने इसी सच्चाई को बताते हुए लिखा है :—

स्वामी बैठक अद्भुति, राधा निरखनहार।
और न कोई लख सके, शोभा अगम अपार ॥

इस शब्द में वही भेद छिपा है, जिसे मैंने आपको अपनी ओर से सरल भाषा में हर एक मासिक संदेश में और हर एक सत्संग में बताया है। मुझे पूरी आशा है कि आप इन सत्संगों और इन संदेशों को ध्यान से पढ़ते हुए बिना किसी परिश्रम के धीरे धीरे जीवन के उस मकसद को पा जायेंगे, जिसके लिये बड़े-बड़े सिद्धयोगी, संत, महात्मा आयु पर्यन्त (जीवन भर) कोशिश करते रहते हैं। इसलिये आप तुलसीदास जी के नीचे दिये गये शब्द के असली अर्थ को समझ सकते है—

कोटि-कोटि मुनि यत्न कराहीं
अन्त राम पुनि आवत नाहीं।

मालिक के साक्षात्कार का अधिकार केवल उसी व्यक्ति को है, जो साँसारिक धारा में न बहकर उलटकर राधा बन जाता हैं और शरीर, मन, आत्मा और सुरत से पूर्णतया सद्गुरु के प्रेम में ओत प्रोत होता हुआ सहज में ही साँसारिक इच्छाओं से इसलिये ऊपर उठ जाता हैं, क्योंकि स्थूल, सूक्ष्म

ौर कारण जगत् का सर्वाधार उसकी आकाँक्षा का लक्ष्य बन
ाता है । जहाँ पर आकांक्षा एवं उच्चतम परमतत्व में आत्म
ति (पराप्रेम) हो जाती है तो नीचे के दर्जे स्वतः ही परि-
र्ण हो जाते हैं । दूसरे शब्दों में आकाँक्षा के स्तर पर नीचे
दर्जे अपने आप गौण हो जाते हैं और साधक उस राधा-
ामी अवस्था पर पहुँचता है जिसे बेख्वायशी की ख्वाईश
हा जाता है । इस अवस्था को खाली अवस्था भी कहा जाता
। यह पूर्णता की अवस्था है । इसके फलस्वरूप मनुष्य कामी
नहीं बनता अर्थात कामनाओं और वासनाओं को तृप्त
रने के लिये साधन नहीं जुटाता, किंतु पूर्णकाम होने के कारण
की सारी आवश्यकतायें, वासनायें और इच्छायें उचित
से इस प्रकार पूरी हो जाती है कि उसका जीवन सत्यम्,
वम्, सुन्दरम् तीनों की मिलौनी बन जाता है । उसका लोक
बन जाता है और परलोक भी बन जाता है । इस हालत
रहते हुए शरीर छोड़ते समय भी वह विचलित नहीं होता ।
ो को अन्त में राम का आना कहते हैं । जैसा कि पहले
गया है कि यह राम के आने की हालत उसी को मिलती
ो पूर्णतयः अपने आप को पराप्रेम में सद्गुरु को समर्पित
देता है ।

प्रसंगवश इस मासिक सन्देश में दौरे की सूचना देते हुए
आपको सद्गुरु सत्संग और सत्नाम की व्याख्या के सिल-
में भी उस विषय की व्याख्या कर ही दी है जो हमारे
मासिक संदेशों में चल रहा है । जहाँ तक सत्संग के
की सूचना का सम्बन्ध है, मैं २६ जनवरी को ही दहली
पंजाब से रवाना होकर ३ बजे दुपहर तक होशियारपुर
गया । मानवता मंदिर में मासिक सत्संग के लिये बड़ी
संख्या में सत्संगी दूर-दूर से आये हुए थे । इसलिये

रविवार की रात्रि का सत्संग हर महीने की भाँति बहुत ही प्रभावशाली रहा और सत्संगी इतने ध्यानमग्न हो गये कि मेरे साथ-साथ उन्हें भी समय का आभास न रहा। यह सत्संग रात के दस बजे तक चला, जब सत्संग समाप्त हुआ, तो ऐसा लगा कि हम सब एक अथाह सागर के समुद्र में डुबकी लगाकर बाहर निकले हैं। मेरे इन शब्दों को वो सभी सत्संगी पूरी तरह से समझ सकते हैं जिन्होंने उस दिन जैसे सत्संगों से भाग लिया है। मैंने आपको पहले भी बताया है कि मालिक की मौज से पहले से सत्संगों में मैं स्वयं शब्द पढ़ने वाली साधना और सभी सत्संगी अपने आपको भूल जाते हैं। इस बार यमुना नगर में जो सत्संग हुआ, उसमें एक सत्संगी श्री तिवारी ने यही भाव व्यक्त किया था। इसकी चर्चा में यथा स्थान अगले मासिक सन्देश में करूँगा।

२७ जनवरी का मासिक सत्संग मानवता मन्दिर के बड़े हाल में बड़े उत्साह प्रेम और श्रद्धा से ओत प्रोत था। इस सत्संग के बाद हर मास की भाँति भंडारा हुआ। यहाँ पर मैं यह बताना चाहता हूँ कि मंदिर के भंडारे के भोजन में एक विशेष रस होता है। पिछले कुछ महीनों से जब मेरे सामने लंगर का भोजन प्रसाद के लिये आता है तो वह मुझे इतना अच्छा लगता है कि मैं कई बार लंगर की दाल रोटी खाकर तृप्त हो जाता हूँ और तुलसीराम द्वारा बना हुआ लजीज और असली घी का बना हुआ भोजन ज्यों का त्यों रह जाता है। हैरानी की बात तो यह है कि वही तुलसीराम जो हमारी रसोई में दाल बनाता है, वह इतनी स्वादिष्ट नहीं होती जितनी कि उसी के द्वारा बनी हुई लंगर की दाल होती है। यह सभी सत्संग में बहती हुई धारा और लंगर में भोजन बनाने वालों पर उस धारा के प्रभाव का परिणाम है।

इस मासिक सन्देश में यहाँ तक के दौरे की सूचना काफी है। इन शब्दों के साथ मैं आपको इस महीने की सद्भावना सप्रेम आर्शीवाद और राधास्वामी भेजता हूं। आप सब स्वस्थ सुखी और आन्नदमय रहते हुए पराशक्ति का अनुभव करें।

आपका फकीरमय
मानव

—×—

R. S.

नमस्कार

नतो सत्गुरुम् सच्चिदानन्द रूपम्।
नमो अद्भुतम् अद्वितीयम् अनुपम् ॥१॥

नहीं रूप कोई हैं सब रूप तेरे।
तेरी सब ही प्रजा हैं और भूप तेरे ॥२॥

धरा सन्त अवतार जग को चिताया।
दुःखी दीन को अंग अपने लगाया ॥३॥

दिया संग सन्त का मिला सत का जीवन।
तेरे नाम पर शीश तन-मन हैं अर्पण ॥४॥

झुके राधास्वामी चरण हँसते-हँसते।
तुझे कहते हैं सब नमस्ते-नमस्ते ॥५॥

—[गाफिल शब्दावली से]

R. S.

अरदास

('योगी' प्रथम खण्ड)

मुक्ति की चाह नहीं मन में,
नहीं लक्खों की कामना हीये में लाऊँ ।
शक्ति को लेके कहा करिहों,
और बुद्धि को लेके न भ्रष्ट कहाऊँ ॥
कहा करिहों ले कुटुम्ब को नाथ,
मैं ऊँच न नीच न शीश नवाऊँ ।
प्रेमी की नाथ यही अरदास,
कि आपके चरणों में प्रेम बढ़ाऊँ ॥
कोई तो मुक्ति का मारग चाहत,
कोई यह लक्खों के पीछे ही धावै ।
शक्ति को ढूंढे जहाँ तहाँ कोई,
और पाय के वह शक्तिवान कहावै ॥
बुद्धि को कोई कुटुम्ब को कोई,
यह लेने के कारण इष्ट रिझावै ।
'प्रेमी' की नाथ यही अरदास,
कि आपके चरणों में प्रेम बढ़ावै ॥

दोहा—मुक्ति न चाहूँ सतगुरु, नहीं लक्खों की चाह ।
तेरे चरणों पड़ रहूँ, यह प्रेमी की चाह ॥

सोरठा— अर्ज करूँ कर जोर, शीश नवाऊं चरण में ।
साझ समय और भोर, प्रेमी धावे चरण कूं ॥

—×—

योग

योगियों ने योग की तारीफ सिर्फ इतनी की है कि चित्त की वृत्तियों (दिली जजबात महसूसात) के निरोध (रोकथाम) का नाम योग है। जब मन को शान्ति प्राप्त हो जाती है और संकल्प विकल्प नहीं उठता वही योग है। योग मिलने को कहते हैं। योग का केवल यही अभिप्राय है। इससे ज्यादा कुछ नहीं। मन मन में मिल जाय।

संस्कार

संस्कार पिछले जन्मों के फल को कहते हैं और इसी को चित्रगुप्त भी कहते हैं। चित्रगुप्त इस वजह से कहते हैं कि पिछले जन्मों के फल सूक्ष्म शरीर के ऊपर छाया के रूप में चिपटे रहते हैं और इन्हीं के कारण मनुष्य दूसरा जन्म लेता है। या यों समझना चाहिए कि मनुष्य को पिछले जन्मों में संसारी वस्तुओं की कामना हुई जिसको वासना कहते हैं तो वही कामना या वासना मनुष्य को दूसरा जन्म लेने को मजबूर करती है। अब अगर कामना या वासना न रहें तो मनुष्य का दूसरा जन्म न हो। अब वही संस्कार जो सूक्ष्म शरीर पर चिपटे हुए हैं इस जन्म में जब उभरने पर आते हैं तब उसी को कुरेद कहते हैं। और यह कुरेद ही मनुष्य को अनजान में उसी तरफ ले जाती हैं जहाँ उसको इनके भोगने का अवसर मिलता है।

योग की कामना

अब यदि किसी मनुष्य को पिछले जन्म में किसी कारण से योग धारण करने की इच्छा पैदा हो गई और वह उस

कामना की पूर्ति न कर सका हो तो फिर वही कामना इस ज
में कुरेद के रूप में अनजाने ही पैदा हो जावेगी और मनु
अनजान में ही उसकी खोज में लग जावेगा। वह कामना कई
प्रकार की है जैसे - इस प्रकार की किताबों में मन लगाना,
साधु, सन्यासी, महात्माओं में श्रद्धा और उनके सत्संग की
इच्छा इत्यादि में भटकना। उनके सत्संग से उसको यह चेत
होगा कि बगैर गुरु के ज्ञान नहीं होता। उसके मन में गुरु
करने की इच्छा पैदा होगी। जब यह इच्छा बेकली और तड़प
की सूरत अख्त्यार कर लेगी तब उसको किसी की जबानी
अनजाने में ही गुरु का पता मालूम होगा। जैसे किसी ने कहा
कि उस गाँव में या मन्दिर में पहुचे हुए महात्मा आये हैं और
बड़ी अच्छी कथा वार्ता होती है। अब क्योंकि यह मनुष्य
खोजी है श्रद्धा के साथ उनके सत्संग में पहुंचेगा और अगर
वह सच्चे गुरु और सन्त हैं तो उनके वचनों को सुनकर इसके
मन को तृप्ति होती जायेगी और उसके मन को विश्वास आ
जायेगा कि यही महात्मा गुरु बनाने के योग्य हैं। इतनी बात
समझ में आते ही यह अपने आप को उन महात्माओं के चरणों
में अर्पण कर देगा और वे महात्मा उसको योग की दीक्षा देकर
और शिष्य रूप में ग्रहण करके कृतार्थ कर देंगे।

*

अपना उदाहरण

मैं बचपन से ही अपने माँ बाप और बड़े बूढ़ों की देखा-
देखी शिवजी, कृष्ण जी आदि देवताओं की पूजा और व्रत
गंगास्नान आदि में मन लगाये रहता था। परन्तु जब विद्या

पढ़ने से निवृत्त हुआ तो २१ साल की आयु में विचारों की स्वतन्त्रता हुई। आर्य समाज में दाखिल हो गया। वहाँ मुझे गायत्री की एक छोटी सी पुस्तक दी गई। दोनों समय संध्या करने को कहा गया। यद्यपि मैं दोनों समय सध्या गायत्री पढ़ता था और प्राणायाम भी दोनों समय किया करता था। परन्तु आठ साल तक करने के पश्चात भी मुझे इससे किसी प्रकार की शान्ति नहीं हुई। वही कुरेद जो मुझे अनजाने आगे हो को ढकेलती रहती थी तड़प और बेचैनी की हालत रखती रही। अन्त में इसी कारण से तीस साल की आयु में मैंने इसको छोड़ दिया। मन में इच्छा पैदा हुई कि योग साधन की विधि किसी साधु, सन्यासी या महात्मा से पूछना चाहिए इसलिये मैं उन लोगों की तलाश में रहने लगा। और मिलने पर इनका आदर सत्कार करता और अपने मन की इच्छा इनके सामने रखता। साथ ही योग को पुस्तकों को देखने का कार्य भी जारी रक्खा और १२ साल तक निरन्तर इन्ही की ओर लगा रहा। परन्तु मन को तब भी कोई शान्ति नहीं हुई। मेरे मन की कुरेद या तडप में जरा सी भी कमी न हुई। इससे निराश होकर सबको छोड़ दिया।

इसके कुछ ही महीने पीछे ही मैं एक दिन अपने पेशे केदारी के कार्य से नहर माँट ब्रांच की पटरी पर शादीपुर के ीचे होकर जो कि मेरे गाँव झाँगीरपुर से ८ मील की दूरी र है जा रहा था। अचानक ठाकुर टोड़रसिंह ने जो वहां के ईस और मिलने वाले हैं मुझे देख लिया। अपने नौकर को झे बुलाने को भेजा। वे अपनी चौपाल की ऊपरी मंजिल पर े हुए थे। जब मैं अहाते में घुसा तो गोबर के ढेर में एक ताब पड़ी हुई देखी। इसलिये मैं उसे निकालकर और झाड़ छकर पढ़ने लगा। वह लाहौर का मासिक पत्र 'साधू' था

जो महर्षि शिवब्रतलाल जी के सम्पादिकत्व में निकलता था।
जब मैं ऊपर पहुँचा तो ठाकुर साहब ने फरमाया कि ऐसे पत्र तो मेरे पास बहुत पड़ हुए हैं। मैं इसका खरीदार रह चुका हूँ। मैंने कहा कि जिस कदर पत्र इस प्रकार के हों फौरन निकाल दीजिये यह सुनकर उन्होंने दस-बारह पत्र निकाल कर दे दिये। मैं शाम तक तो वहीं पढ़ता रहा और रात को अपने मकान पर आकर पढ़ता रहा और दूसरे दिन इसके जारी करने की दरख्वास्त भी भेज दी कुछ किताबें भी उनकी लिखी हुई मंगा लीं। निरन्तर ६ साल तक अवलोकन करने के पश्चात मुझे यह मालूम हुआ कि यदि मुझे कुछ मिलेगा तो इन सम्पादक साहब से ही मिल सकता है। इसलिये मैं शीघ्र ही बिना किसी पत्र व्यवहार के पहिली जनवरी सन् १९१७ में लाहौर चल दिया। दूसरी फरवरी के सुबह लाहौर पहुचकर महर्षि जी महाराज के दर्शन का लाभ हुआ। मुझसे पूछा कि किस मतलब से यहाँ आप आये हैं। मैंने अर्ज किया कि आपकी कुछ किताबों और पत्रिकाओं का अवलोकन किया है। इनमें मैंने सब कुछ पाया मगर एक बात इनमें नहीं मिलती जिसको मेरा दिल तो चाहता है परन्तु मैं स्वयं नहीं जानता कि यह क्या बात है। उसे पूछने के लिये आपकी सेवा में हाजिर हुआ हूँ। उन्होंने उत्तर दिया कि उस बात को हम कल सुबह बतलायेंगे। इसलिये तीसरी फरवरी सन् १७ की सुबह मुझे दीक्षा मिली और मैं राधास्वामी मत में शामिल हो गया। मैं सुमिरन, भजन, नाम की दीक्षा पाकर भी यह न समझा कि यही सम्बन्ध गुरु चेले का है। जब ५५ साल की आयु में दुबारा दर्शन किये तब मैं समझ गया कि गुरु चेले का सम्बन्ध क्या है और योग साधन का लाभ क्या होता है। इसलिये दुबारा दर्शन होते ही मैंने गृहस्थाश्रम को अपने मन से त्याग

दिया। महर्षि जी महाराज की आज्ञानुसार राधास्वामी धाम मैं ही रहने लगा और उनकी आज्ञा पालन में दत्तचित्त रहा। जब मेरी आयु ७० साल की थी तो परम गुरु, पूरणधनी, दातादयाल महाराज जी ने २३ फरवरी सन् ३८ को यह पंच-भौतिक चोला छोड़ दिया। जब इधर उधर के फिरने के पश्चात समय मिलता है तो वहीं जाकर वास करता हूँ।

यह मैंने अपना उदाहरण दिया है। जैसा कि मन की छिपी हुई कुरेद के पश्चात गुरु के चरणों का दर्शन हुआ। इसी प्रकार सब सत्संगी भाई चाहे वह किसी जगह के सत्संगी हों राधास्वामी धाम. दयाल बाग, ब्यास या बनारस आदि जब अपने मन की निरख परख करेंगे तो उनको भी यही मालूम होगा कि मनुष्य अनजान में भी उसी वस्तु को हासिल कर लेता है जिसको कि उसके पिछले जन्म के संस्कारों की कुरेद उसे उधर ले जाती है। यदि वह कुरेद कमजोर है तो संसारी कामों में रति होने से दब जाती है।

सुरति-शब्द योग

राधास्वामी मत में सुरति शब्द योग की दीक्षा दी जाती है सुरति तब्बजह को कहते हैं, शब्द अनाहद को कहते हैं। यही सुरति जीवन की धार है। सुरति कर्मकान्डी ग्रन्थों में विश्व धारा के नाम से भी पुकारी जाती है। सुरति धार है, और शब्द उसका आधार है। इन दोनों के मेल से दुखों से छुटकारा मिलता है और अनन्त सुख की प्राप्ति होती है। बहुत से सत संगी भाई इन बातों के न जानने के कारण दस-दस, बीस-बीस साल तक भी साधन से उन्नति नहीं कर पाते। मुझ से १०-२० साल तक के अभ्यास करने वाले भाइयों ने शिकायत की है कि हमें कुछ हासिल नहीं हुआ, न रोशनी होती हैं न

शब्द ही प्रकट होता है। मैं कहता हूं उस में १०-२० साल ... कुछ काम नहीं है। ग्रहस्थ धर्म का पालन करते हुए भी साल ६ माह की आवश्यकता है। यदि किसी भाई को समय मिले और इसकी चाह भी हो तो जब मैं राधास्वामी धाम में ठहरूं तो केवल एक महीने के वास्ते मेरे पास रहें और देखें कि उन को शब्द और रोशनी कितनी जल्दी और कितने थोड़े समय में प्राप्त हो जाती है।

दीक्षा

दीक्षा कहते है गुरु के मन्त्र देने को। मन्त्र कहते हैं राय को। गुरु ने इस योग का साधन करके अपने अनुभव से जो राय स्थित की है उसको मन्त्र कहते हैं। शिष्य को चाहिए कि गुरु से दीक्षा लेने के पश्चात उनके सत्संगत में रहकर कुछ दिन अभ्यास करे और उनके सत्संगत का लाभ उठाये। और सुमिरन, भजन, ध्यान के मार्ग की रुकावट का गुरु से भेद लेता हुआ उनका प्रसन्न करने की इच्छा से सेवा करे। गुरु की सेवा करना ही मुख्य है।

शिक्षा

शिक्षा—जो क्रिया दीक्षा देते समय गुरु ने बताई है उसका बाहरी और भीतरी भेद बतलाते हुए शिष्य को उस पर अपने सामने क्रिया करने का नाम शिक्षा है। इसी को सतसंगत भी कहना चाहिए। इसी कारण दीक्षा लेकर कुछ दिन गुरु की संगत में अवश्य रहना चाहिए ताकि उधर को चलने की राह में रुकावट और विघ्न पैदा हो तो वे दूर कराते चलें गुरु जब अपने शिष्य को किसी मन्त्र का उपदेश देते हैं और जब शिष्य उस मन्त्र को जान लेता है तब वह शिक्षा का अधिकारी होता

होता है और इसको इस प्रकार समझो कि किसी दुकानदार का लड़का लाखों रुपयों का हिसाब किताब सीखता है और सैकड़ों मन अनाज बगैरा का भाव सीखता है। और उसमें वह इतना अधिकार प्राप्त कर लेता है कि किसी भाव का कितनी तोल में चीजों का मूल्य शीघ्र ही निकाल कर रख लेता है परन्तु जब वह अपने पिता के पास दुकान पर जाता हैं और पिता उसका उससे कहता है कि बेटा ५ पैसा का गुड़ ८। सेर के भाव से तोल दे तो वह लड़का बड़े झंझट में पड़ जाता है और उंगलियों पर हिसाब लगाने लगता है परन्तु ग्राहक जल्दी मचाता है तब उसका पिता कहता है कि तुम पढ़ तो लिये पर गुने नहीं। इसी प्रकार जो शिष्य दीक्षा लेकर गुरु से अलग हो जाता हैं वह शिक्षा नहीं ले सका और वह उस मन्त्र की सिद्धी नहीं कर सकता।

मैं जब स्कूल में पढ़ता था और मेरे बाबा आढ़त की दुकान करते थे तो एक दिन काम ज्यादा होने के कारण मुझसे कहा कि तुम यह बही ले जाओ और बाजार से उघाई कर लाओ। जिसके नाम जितनी रकम लिखी हुई है उतनी शुमार करके और परख कर ले आओ। इसलिये मैं बाजार जाकर सब दुकानदारों से रुपया वसूल कर लाया, और थैलो और बही को लाकर उनके आगे रख दिया। उन्होंने कहा कि इसका जोड़ लगाओ कि कितने रुपये हुए। मैंने जोड़ लगा कर उनको बतला दिया। थैली के रुपयों की शुमार करो, जब शुमार की गई तो जितना जोड़ बही में था, थैली में उतना रुपया न निकला। इसलिये दो-तीन बार जोड़ लगाने पर गलती निकल गई और दोनों जोड़ एक मिल गये। अब मैं समझा कि इसी को शिक्षा कहते हैं।

इसी प्रकार शिष्य जब गुरु से योग साधन की दीक्षा

लेकर गुरु की सत्संगत में रहकर अभ्यास करता है
रोज-रोज का शिष्य से उसके अभ्यास का हिसाब
लेते रहते हैं ; जहाँ कहीं भूल-चूक होती है उसे सही
रहते हैं। शिष्य बहुत जल्दी उनकी सेवा करता हुआ अपन
आत्मिक उन्नति कर लेता है और इस प्रकार वह थोड़े दिन
में ही अपना काम बना लेता है। इसे इस प्रकार समझो।

जब महाराज रामचन्द्र जी ने गुरु वशिष्ठ जी से दी
ले ली नो उसका कुछ फल न हुआ परन्तु जब विश्वामित्र
महाराज के पास उनके आश्रम में रहे तो उन्होंने उसी अभ्य
को अपने सामने कराकर और अनेक प्रकार से शिक्षा दे
थोड़े ही दिनों में इस लायक कर दिया कि विश्वामित्र जी
साथ जनकपुर में सिया स्वयंवर में जाकर शिवजी का ध
तोड़ दिया।

गुरु

मनुष्य शरीर में मालिक कुल जब आया हुआ हो
उसे गुरू कहते हैं। गुरु आदर्श और इष्ट ऊँचे से ऊँचा
सबसे बड़ा है। जिसकी महिमा कोई नहीं कह सकता।
परम तत्व है।

गुरु कीजिए जान पानी पीजिए छ

जब तक यह न मालूम हो कि हमें गुरु क्यों करना
न तो गुरु की तलाश की जाय और न गुरु किया जाय।
प्रश्न—गुरु क्यों करना चाहिए ?
उत्तर—गुरु उसी मनुष्य को करना चाहिए जिसके
जानने की या अपने आत्मोन्नति की इच्छा हो

की मलीनता अर्थात मन का मैल धोने की इच्छा होय या मन में शान्ति लाने की इच्छा हो। इसको इस प्रकार भी कह सकते हो जिसको अपनी आत्मा गिरती हुई मालूम हो और मन मलीन रहता हो और मन में अशान्ती रहती हो उसको गुरु करना चाहिये।

प्रश्न—आत्मा का गिरना किसे कहते हैं ?

उत्तर—साधू, सन्त, महात्माओं में रुचि का न होना, न इनमें भक्ति और सेवा का भाव होना, प्रत्येक जीव जन्तु में बुराई का देखना और उनसे घृणा करना और काम, क्रोध, मोह, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष का बहुतायत होना आत्मा की गिरावट समझी जाती है।

प्रश्न—मन मलीन कैसे हो जाता है ?

उत्तर - तामसी भोजन करना, कड़वे वचन कहना, नीच काम और नीच पेशों की कमाई से शरीर का पालन करना मन मलीनता कहलाती है।

भोजन तीन प्रकार के होते हैं:—तामसी, राजसी, व सात्विको।

गर्म मसाला, बासी खाना, उड़द, बाजरा, चना, मटर, लहसन, प्याज, अरबी, खट्टा दही, नशा करने वाली चीजें, माँस, मदिरा इत्यादि जो आलस्य और नींद ज्यादा लाती हों वह तामसी भोजन कहलाते हैं।

गेहूँ, अरहर, मसूर, घी, गाजर, शकरकन्द इत्यादि यह राजसी भोजन कहलाते हैं और चावल, मूंग, कूट, सिंघाड़ा, केला व कन्द मूलफल, इत्यादि हल्का और शीघ्र पच जाने वाली वस्तु सात्विक भोजन कहलाते हैं।

ताना देना या जान पूछ कर ऐसी बात कहना जिससे

सुनने वाले के दिल को दुख पहुचे इसे कड़वे वचन कहते हैं

और चोरी, जुआ, चुगली, झूठ बोलना इत्यादि २ नीच कर्म कहलाते हैं।

और हड्डी, चमड़ा, मांस मदिरा का व्यापार करना नीच पेशे कहलाते हैं।

दुखों से अथवा संसारी कार्यो के बिगड़ने से अथवा अधिक दिनों की बीमारी से, अथवा सन्तान, भाई, बन्धों के बिछोह से, घर में कलह रहने के कारण मन में अशांती रहती हो और इनसे छुटकारा चाहता हो वही मनुष्य गुरु बनाने का अधिकारी है वही जान सकता है कि मुझे बिना गुरु के आत्मिक, मानसिक और शारीरिक शांती नहीं मिल सकती है।

जो मनुष्य गुरु बनाने के लिये जांच या पहिचान के लिये गुरु का इम्तहान लेना चाहते हैं वह तो गुरु करने का नाम भी न लें। जब तक उनमें यह इच्छा बनी रहेगी वह आत्मिक ज्ञान के अधिकारी नहीं हो सकते। अपने इष्ट की जाँच और नाप तौल अब तक किसी ने नहीं की। अगर वह आदर्श जाँच नाप, तौल में आ जांय तो यह इष्ट आदर्श नहीं है। उनको कुछ और कहो क्योंकि, ब्रह्म जानाति ब्राह्मण: अर्थात जो ब्रह्म को जान जाता है वह ब्रह्म ही हो जाता हैं। ऐसे ही जो गुरु को जान जाता है वह गुरु ही हो जाता है। इसलिये जिसने गुरु को जानने और पहिचानने की इच्छा की वह शिष्य कैसे हो सकता है! इन बातों को भली भाँति जानना चाहिए कि हमको गुरू करने की आवश्यकता भी है या नहीं। बस इतना ही बहुत है।

आसन, भोजन भाव आदि

पहले शिष्य को आसन सिद्ध कर लेना चाहिए। वह ऐसा

सिद्ध हो जाय कि घन्टे दो घन्टे तक एक ही आसन पर बैठा रहे। बार-बार पहलू न बदलना पड़े। नहीं तो एकाग्र चित्त होने में विघ्न पैदा होगी। मन एकाग्र न हो सकेगा। कोई ऐसा आसन अपने मन के लायक छाँट लेना चाहिए जिस पर घण्टे दो घण्टे तक सहज रीति से बैठा जा सके। आसन सिद्ध हो जाने के पश्चात इस शरीर का साधन करना चाहिए अर्थात इंद्रियों की और वस्तु की तरफ सुरति बिल्कुल न जाय, और शरीर की सुधि बुधि न हो। इसी को आसन की दृढ़ता कहते हैं और योगाभ्यास के समय सत्संगी भाइयों को सात्विक और सूक्ष्म (कमी के साथ) भोजन करना चाहिए। तामसिक भोजन और बहु भोजन अभ्यास के समय नींद,आलस्य, शरीर का टूटना, जंभाई इत्यादि विघ्न पैदा कर देते है। मैंने देखा है जो सत्संगी भाई आसन और भोजन के बारे में बदपरहेजी करते हैं वही भाई शब्द के न होने और मन के अभ्यास में न लगने की शिकायत करते हैं। यदि ऊपर की लिखी बातों पर चला करेंगे तो फिर कोई कारण नहीं कि उनका शब्द न खुले और मन एकाग्रचित्त होकर अभ्यास में न लगे। ऐसा हो ही नहीं सकता कि शब्द न हो। शब्द का होना स्वाभाविक क्रिया है और इसी कारण से इसको सहज योग कहते हैं। यदि अभ्यासी विश्वास और भाव गुरु के चरणों में रखकर इस योग का साधन करे तो वह अपना इसी जन्म में काम बना लेगा। कहा भी है :—

भावम् फल दायकम्, विश्वासम् फल दायकम्

भाव और विश्वास से ही इष्ट की प्राप्ती होती है। इसी का नाम सिद्धि शक्ति है। इस सिद्धि शक्ति की जड़ सुमिरन में होती है। इष्ट प्राप्ति की प्रबल इच्छा ही मन में इष्ट के

खेंचने की शक्ति पैदा करती है, और अपना काम बना ले है। यह स्वाभाविक नियम है।

छन्द

भावना पक्की हो मन में, पक्का ही विश्वास हो।
क्यों न ऐसे जन की, इस रचना में पूरी आस हो॥
आस में विश्वास और विश्वास, जग की आस हो।
जिसमें यह विश्वास है, वह कैसे जग में निराश हो॥

और भी कहा है कि विश्वास के साथ गुरु के चरणों को छूकर यदि अभ्यास किया जाय तो कुछ दिन में ही अभ्यासी की आत्मिक उन्नति हो जाती है।

गुरु पद परस करो अभ्यास।
घट में देखो विमस उजास॥

और महर्षि जी महाराज का वचन है :—

वे मदद मुरशद के मत जा राह में।
संकड़ो उसमें बला खतरात हैं॥१॥
यह नसीहत सुन ले दिल से मान ले।
साथकर मुरशद का उनसे ज्ञान ले॥२॥
ज्ञान लेकर राह रूहानी में आ।
कर अमल हो कशफ असरारे खुदा॥३॥

दोहा—गुरु ब्रह्मा गुरू विष्णुः गुरूर्देव महेश्वरः
गुरु साक्षात् परब्रह्मः तस्मै श्री गुरुवे नमः

राधास्वामी पंथ

राधास्वामी मत में तीन चीजें मुख्य हैं—सुमिरन, ध्यान भजन। दीक्षित अभ्यासी को गुरु दीक्षा देते समय उन स्थान का पता देते हैं जो उसके घट के अन्दर है। उनको करते हु

आगे की तरफ बढ़ते जाइये।

सुमरन

किसी चीज को बार बार याद करना और उसी को बार बार सोचना सुमरन कहलाता है। राधास्वामी मत में नाम का सुमरन किया जाता है जिसको गुरु दीक्षा देते समय शिष्य को दान देते हैं। वह मालिक का मुख्य नाम है। यह बगैर होठ और जीभ हिलाये सुरति की जवान से ही लिया जाता है। इसी को अजपा जाप कहते हैं और इसकी धुनि आप ही घट में हुआ करती है।

ध्यान

जिसकी याद घट में बार-बार की जाती है उसकी सुरत घट में आप ही आ जाती है। वह सुरत गुरु या नामी की ती है क्योंकि मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मनुष्य शरीर में लिक कुल आया हुआ हैं इसलिये नाम के साथ साथ गुरू शकल को भी याद करना चाहिए। ऐसी जगह याद करना हेए कि वह दृढ़ता के साथ स्थित हो जावे। इसी को ध्यान म गुरू मूर्ति कहते हैं। यही ध्यान करने का मूल अर्थात है। इसमें तीन दर्जे हैं—धारणा, ध्यान, समाधि। चाहे चीज को देखो अन्दर या बाहर. यही तीन दर्जे होंगे, यह अन्दर के लिये बोले जाते हैं।

ारणा कहते हैं सुरति की आंख से अपने घट में गुरू की को देखने में लग जाता। इस में भी तीन दर्जे हैं। एक वाला, दूसरा जिसको कि देखें, तीसरा जिससे देखें। जब यही धारणा गहरों अवस्था को पहुंचती है तो दो जाते है एक देखने वाला, दूसरा जिसको देखें। यह

ध्यान की प्रथम अवस्था है। परन्तु जब अभ्यास करते-करते ध्यान गहरी अवस्था को पहुँचता है तो उसमें ध्यान करने वाले और केवल जिसका ध्यान किया जाय वही रह जाता है और जब यह अवस्था ज्यादा देर तक ठहरने वाली हो जाती है तो यही समाधि कहलाती है।

समाधी में मनुष्य को अपने शरीर और मन की किंचित भी सुधि नहीं रहती और इसी को किसी वस्तु में लय हो जाना कहते हैं। इसलिये इसी प्रकार गुरु की सूरत का ध्यान करना चाहिए, और यह नाम के साथ-साथ ही होते रहना चाहिए।

भजन

राधास्वामी मत में अनहद शब्द सुनने को भजन कहते हैं जिसकी व्याख्या विस्तार के साथ गुरु दीक्षा देते समय शिष्य को भली प्रकार समझा देते हैं। यह शब्द संसार की सभी वस्तुओं यहाँ तक कि सूरज, चाँद, पृथ्वी में ही नहीं गूंजता रहता है बल्कि मन में आने वाली कोई चीज ऐसी नहीं है जिसमें स्वाभाविक शब्द न गूंज रहा हो। शब्द दो प्रकार का होता है— एक धुनात्मक, दूसरा वर्णनात्मक। धुनात्मक शब्द की केवल धुन हुआ करती है जिसका आदि अन्त नहीं होता चाहे उसको अनेक प्रकार से दर्शावें। जैसे घण्टे के शब्द को टन टन बोलते हैं परन्तु यह केवल उसके समझाने बुझाने के लिये बोला गया है। वास्तव में यह ठीक नहीं है। गुरू दीक्षा देते समय अपने शिष्य को इसी धुनात्मक शब्द सुनने का उपदेश देते है और यह पाँच प्रकार का होता है—

(१) घण्टा शंख (२) मृदंग, डमरू (३) सारंगी, रारिंकार (४) बंशी, गिटकरी (५) बीणा और गुरू के बताये हुए संकेत

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

के बताये हुए इन सातों आसमानों पर इन्हीं शब्दों को सुनता हुआ चढ़ जाता है और जब सुरति शब्द में लय हो जाती है तो शिष्य को संसारी दुख सुखों से छुटकारा मिल जाता है और तत्व को बहुत कुछ समझ आ जाती है।

और वर्णात्मक नाम उसे कहते है—जिसके कुछ अर्थ भी हों और वर्णों से मिलकर बना हो।

नाम

गुरू उस नाम का दान देते हैं जिसको उन्होंने कार्य में लाकर और साक्षात्कार करके देख लिया है कि यही नाम मालिक का सत्य नाम है और उसी नाम का उपदेश शिष्य को करते हैं जब शिष्य गुरू के चरणों में विश्वास और श्रद्धा रख कर उस नाम का अभ्यास करता है तो कुछ समय पर्यन्त उस को भी अनुभव होने लगता है कि यही नाम मालिक का सत्य नाम है। उसको इसी नाम के अभ्यास से साक्षातकार होता है। नाम को उन शब्दों में जो घट में हो रहे हैं सुनना चाहिये यही सुमरन का नियम है और सुनते-सुनते जब सुरति उस नाम की धुनि में ठहर जाय और अभ्यासी को अपने तक की सुध न रहे तो यही नाम सुमिरन की या नाम जपने की हद है और यह तीनों सुमरन भजन, ध्यान घट में एक साथ हो करने चाहिए या गुरू जिस प्रकार दीक्षा देते समय शिष्य को बता दे उसी प्रकार शिष्य को करना चाहिए। मुझ से सत्-संगी भाइयों ने कहा है कि हम को रोशनी नहीं होती है वे भाई यदि त्राटक करेंगे तो एक सप्ताह के भीतर अच्छी प्रकार होने लगेगी। इसमें सन्देह नहीं करें। त्राटक की क्रिया गुरु से बड़ी प्रार्थना करके आधीनता के साथ पूछ लेना चाहिए, सुरति

शब्द योग में कोई ऐसा काम नहीं है जिसको नियमानुसार किया जाय और उसका साक्षात्कार न हो। हाँ! चित्त की वृत्तियों को एकाग्र करके उसमें लगा देना हैं।

नाम दो प्रकार का होता है, एक वर्णात्मक, दूसरा धुनात्मक। वर्णात्मक नाम वह हैं जो जुबान से बोला जा सकता है। और उसके कुछ मानी भी हों, और धुनात्मक उस नाम को कहते हैं जिसकी धुनि घट में सुनी जाती है और इसी को असली श्रति कहते है इसी को प्रणव कहते हैं। प्रणव उसको कहते है जो प्राण से कहा जाय और इसी बजह से उसे उद्गीत् कहते हैं जिसके मानी है उधर का गीत। श्रुति शब्दयोग में नाम को उधर के शब्द में सुना जाता है, नाम तो एक ही होता है और धुनि पांच प्रकार की होती है। धुनों को भी नाम कहते हैं। मगर पंथाई को गुरू के बक्शे हुए नाम से ही परमार्थ का लाभ होता है और इसी की मुख्यता है। वर्णात्मक बाहरी नाम है और धुनात्मक अन्तरी है जिसका केवल सुनने से सम्बन्ध है। उसी धुनात्मक नाम के साधन से सुरति शब्द ने लय होगी और जब ही सत्संगी भाई अपने इष्ट की प्राप्ति कर सकेंगे।

सत संग

सत संग दो प्रकार का होता है एक अन्तरी, दूसरा बाहरी अन्तरी सत्संग की मैं पहले बहुत व्याख्या कर चुका हूँ। गुरू के नाम को गुरू की मूर्ति को और गुरू के साक्षात्कार करने को अन्तरी सत्संग कहते हैं, बाहरी सत्संग उसे कहते हैं कि मन से उत्साह के साथ गुरू के वचनो को सुनना और स्वाद-स्वाद उनके वचनों के रस को पीते रहना। इसी को बाहरी और सत्संग एक प्रकार का यह भी होता है कि गुरू के साथ

रहकर उनकी शारीरिक सेवा करना और उनकी प्रसादी लेना और उनकी रहनी को देखकर उस पर विचार करना और वैसा ही बनने का अभ्यास करना।

सेवा

सेवा दो प्रकार की होती है–एक सकाम, दूसरी निष्काम। सकाम सेवा वह है कि संसारी कामना की पूर्ति होने को गुरु की सेवा की जाय। दूसरी निष्काम सेवा वह है जो निस्वार्थ गुरु के प्रसन्न करने या आराम पहुंचाने के लिये अपना कर्त्तव्य समझकर की जावे जिसमें अपना कोई संसारी स्वार्थ न हो. उसी को निष्काम सेवा कहते हैं। मैंने बहुत देखा है कि बहुत से सत्संगी भाई संसारी इच्छाओं के पूरा होने के मतलब से गुरु के चरणों से जाते हैं परन्तु जब वह उसकी कामना पूरी हो जाती है तो फिर वह उधर को कम चाहना कर देते हैं, और कुछ लोग संसारी शर्म लिहाज से थोड़े बहुत चलते रहते हैं।

एक सत्संगी भाई के मुझसे कहा कि मेरे बच्चे नहीं जीते थे। इसी मतलब से जब से गुरु के चरणों से आया हूँ मेरे दो-तीन बच्चे जिन्दा हैं। इसलिये मैं तो उन को भगवान समझता हूँ।

एक दूसरे सत्संगी भाई ने जो बहुत पुराने थे उन्होंने मुझ से कहा कि जब मेरा रोजगार बिगड़ गया तो मैं महाराज के चरणों में आया और इनको गुरु धारण कर लिया तो मेरा बिगड़ा हुआ रोजगार खूब चल गया। इसी से मेरी श्रद्धा और बढ़ गई और मैं अपने इसी अनुभव से कह सकता हूँ कि यह साक्षात् परमेश्वर हैं। इसी प्रकार बहुत से सत्संगी भाइयों

को किसी न किसी संसारी कामनाओं की पूर्ति के लिये
बनाने का जिक्र सुना करता हूँ।

उन सब सत्संगी भाइयों का भला अभ्यास में कब मन लगेगा। मेरे ख्याल में यह तो भाई सत्संग और अभ्यास और उसके फल को समझते भी न होंगे और मैं इसी ख्याल से कह सकता हूँ कि १०० सत्संगी भाइयों में ९९ सत्संगी भाई या तो देखा देखी या चमत्कार के कारण इस पन्थ में शामिल होते हैं और सौ में एक सत्संगी भाई इस भवसागर के दुख से छुटकारा पाने के मतलब से गुरु के चरणों में जाते होंगे और हजारों में कोई एक सत्संगी आर्ति अधिकारी संतों की शरण में आता होगा। सन्तों का सत्संग पिछले जन्म के कर्मों के अनुसार बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है उसका स्वाद कर्म आर्ति अधिकारी जान सकते हैं। इसकी बाबत गुसाई जी ने भी लिखा है।

बिन हरि कृपा मिलें नहिं सन्ता।
सन्त मिलें होय दुख का अन्ता॥

और नही तो बहुत से लोग चमत्कार और करामात और संसारी इच्छाओं की पूर्ति के लिये ही आते हैं इसीलिये उनका मन सत्संग और अभ्यास में नहीं लगता। परन्तु सन्तों के चरणों में कोई किसी मतलब और किसी अभिप्राय से जाय फिर भी उसको कुछ न कुछ आत्मिक लाभ ही होता है क्योंकि यह सन्तों के सत्संग का प्रभाव है जो कि अपना प्रभाव बगैर लाये नहीं रहता है। बहुत से सत्संगी भाइयों की आत्मिक शक्ति उभरने पर आती है तो गुरु मिल जाते हैं और उनसे दीक्षा भी मिल जाती है परन्तु संसारी प्रभावों में आकर उन को छोड़ देते हैं और उधर से मुंह मोड़कर संसारी इच्छाओं में लग जाते हैं।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार

मैंने बहुत से आदमियों से सुना है, चाहे वह पढ़े हों अथवा बगैर पढ़े, और मैं भी अब तक यही समझता रहा कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार को जो मनुष्य मार लेगा वही योग साधन कर सकता है। नहीं तो यह हर एक साधन में विघ्न डालने वाले होते हैं। कुछ योग पर ही निर्भर नहीं है। परन्तु जब मैं गुरु के चरणों में रह रहा था तो गुरू महाराज ने मुझसे कहा था कि जब यह मार दिये जायेंगे तो मनुष्य मनुष्य नही रहेगा। वह दुनियाँ या दीन का कोई काम नहीं कर सकेगा। इसे इस प्रकार समझो।

काम

काम कहते हैं इच्छा को कामना को।

कहा— काम काम सब कोई कहें, कामन चीन्हे कोय।
जेती मन की कल्पना, काम कहावें सोय॥

यह काम दो प्रकार का होता है एक संसारी वस्तुओं की कामना, दूसरी परमार्थ की कामना। परन्तु बहुत से मनुष्य संसारी कामनाओं के प्रपंच में फसे रहते हैं और उनको कभी भी आराम नहीं मिलता। इसी कारण उनको यह ज्ञात नहीं है कि जब तक उनको इन कामनाओं से छुटकारा न मिलेगा तब तक मन को शान्ति न मिलेगी। इसी कारण वह कामी काम को मार देने में ही शान्ती जानते हैं। ऐसा समझना असत्य है। जब कोई कामना ही न होगी तो किसी कार्य करने में मन कैसे लगेगा। इसलिये सन्तों का वचन है कि कामनायें संसारी वस्तुओं के काम में न लगाई जांय बल्कि

परमार्थ के साधन में लगायी जाँय। जैसे-२ यह काम
परमार्थ साधन में लगायी जायेंगी वैसे ही पंथाई योग साधन
में चला जायेगा। इसीलिये जो मनु ष्य राधास्वामी पंथ में
चलने का साधन करते हैं उनको काम के मार देने के ख्याल
को छोड़कर सुरति शब्द योग की कामा करनी चाहिए ताकि
जल्दी काम बन जाय।

क्रोध

क्रोध कहते हैं गुस्सा को। जब म नुष्य के मन के विरूद्ध
कोई कार्य होता है तो उसको क्रोध आता है वह एक प्रकार
की गर्मी है जो मनुष्य के मन को भड़क ा देती है। उस समय
मनुष्य में मनष्यता नहीं रहती और यह अग्नी तमाम शरीर
को भारी हानि पहुँचाती है और उस का फल भी बहुत बुरा
निकलता है। इसी कारण मनुष्यों में आ पस में लड़ाई झग
इत्यादि हुआ करते हैं। जब सांसारी का मनायें पूरी नहीं होती
तब यह आग मन में भड़क उठती है। अगर इसको बिल्कुल
मार दिया जाय तो वह मनुष्य डरकर वि सी के दवाब में आ
जायेगा और सदा पराधीन रहेगा। अग र यही क्रोध परमार्थ
में अपने मन पर विजय पाने के लिये ब ार-बार छिड़क कर
सांसारी न बनने दिया जाकर परमार्थ क ी तरफ लगा दिया
जाय तो यही क्रोध हानि पहुँचाने के बजाय साधन में मददगार
बन जायेगा। इसी को योग के अंगों में प्रतिहार कहते हैं।

लोभ

लोभ कहते हैं लालच को। लालच कह ते हैं कि जो कुछ
मिल गया है उससे ज्यादा मिलने की इच्छा करना। यह लोभ
सांसारी वस्तुओं में मनुष्य को बर्बाद करता है। इसी कारण
मनुष्य के हृदय में हर समय अशान्ति बनी रहती है। यदि

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

यही लोभ परमार्थ के ाभ में लगाया जाये तो साधन में दिन दूनी रात चौगुनी उन्न ति होती जायेगी और पंथाई के दिल में शान्ति आ जावेगी।

मोह

मोह कहते हैं कि जो चीज अपने पास आ गई है और मिल गई है उसी को बनाये रखना और उसकी रक्षा में तन मन लगा देना। हर समय यह चिन्ता रखना कि यह चीज मुझसे अलग न हो जाय। ज यही मोह संसारी वासनाओं में किया जाता है तो मनुष्य के बन्धन का कारण होता है और नाना प्रकार के दुख क्लेश स हता रहता है। आप परेशान रहकर दूसरों को परेशान कर ता है। धन, सन्तान, स्त्री इत्यादि के झगड़ों में अपना लोक परलोक दोनों बिगाड़ लेता है। यदि यही मोह योग साधन में किया जाय तो लोभ और मोह दोनों मिलकर योग साधन में तो बड़ी ही अच्छी रीति से पंथाई को लाभकारी होंगे और सत्संगी भाई कुछ ही दिनों में अपना काम बना लेंगे।

अहंकार

यह अहंकार बड़ा दुष्ट है। जबकि यह संसारी कामों के सम्बन्ध में हो और स त्संगी भाई को अहंकार भँवर गुफा पर पहुंचे हुए तक को प छाड़ देता है और पंथाई को साधन के बारे जब यह पैदा हो जाता है तो उसका कहीं ठिकाना नहीं लगता और साधन किया कराया चौपट कर देता है। इसलिये सन्तों ने इसको मार ने की कभी आज्ञा नहीं दी। हाँ ! यह होना चाहिए कि पंथाई को गुरु का अहँकार होना चाहिए कि मेरे साथ गुरु मौजूद हैं। इस अहँकार से पंथाई बहुत सी बुराईयों से बचता हुआ अन्तर में गुरु का दर्शन पाता रहेगा।

"मनुष्य बनो" (हिन्दी मासिक पत्र) समाचार पत्र (केन्द्रीय) अधिनियम १९५६ नियम ८ फार्म ४ के अनुसार अपेक्षित आवश्यक सूचना

१—प्रकाशन का स्थान	:	अलीगढ़
२—प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३—मुद्रक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
क—राष्ट्रीयता	:	भारतीय
ख—पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़।
४—प्रकाशक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ ।
५—सम्पादक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ ।
६—स्वत्वाधिकारी	:	श्रीमती सुधा मीतल
संरक्षक	:	परमदयाल फकीरचन्द्र जी महाराज

७—मैं सुधा मीतल घोषित करती हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विवरण के अनुसार सही है ।

दिनांक १५ नव०, १९८८

सुधा मित्तल

प्रकाशक के हस्ताक्षर

Regd. NO L—ALG.28

मिलने का पता :—

'मनुष्य बनो' कार्यालय

शिव भवन, लेखराज नगर

अलीगढ़—२०२००१ (उ० प्र०)

अवैतनिक सहायक सम्पादक

महेशचन्द्र मीतल

सम्पादक, व्यवस्थापिक व प्रकाशक

श्रीमती सुधा मीतल

ग्राहक संख्या— 170

श्रीमान् Chaluvadi Narasimhlu Book Seller

V&P.O. Banswada Mandal

Nizamabad. 503187

...क : श्रीमती सुधा मीतल, दातादयाल प्रिंटर्स, लेखराज नगर अलीगढ़